RNI No.-UPHIN/2010/35514

ISSN-0976-349X

इतिहास दृष्टि

2021

संयुक्तांक 18–19

संपादक : सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी

RNI No.-UPHIN/2010/35514
संयुक्तांक : 18-19

ISSN-0976-349X
नवंबर 2021

यू.जी.सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित

इतिहास दृष्टि

संपादक
सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी

संपर्क
228-आर, पूरबी बशारतपुर
निकट एच.एन. सिंह क्रॉसिंग
गोरखपुर-273004
डी-15/16, फ्लैट नं. 302, ओखला विहार
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025

प्रकाशक : **सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी**
228-आर, पूरबी बशारतपुर,
निकट, एच.एन. सिंह क्रॉसिंग
गोरखपुर-273004
मोबाइल : 9519442081

वितरक : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली110002
फोन : 011-23281655, 011-43708938
E-mail: anamikapublishers@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार सुरक्षित, 2021
मुद्रण तिथि : नवंबर 2021

वार्षिक शुल्क :

संस्थागत	:	₹ 800
व्यक्तिगत	:	₹ 400
आजीवन सदस्यता	:	₹ 8,000

भुगतान हेतु केवल बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीऑर्डर ही निम्न पते पर स्वीकार्य हैं सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी, 228 आर, पूरबी बशारतपुर, निकट एच.एन. सिंह क्रॉसिंग, गोरखपुर-273004।

अनुक्रम

संपादकीय 5

1. शिल्पियों से संबंधित राज्य नियमन : बुनकरों के विशेष संदर्भ में 9
   — *सुषमा श्रीवास्तव*

2. आगरा के मुगलकालीन उपेक्षित एवं अल्प ज्ञात स्मारकों का एक पुरातात्विक सर्वेक्षण 18
   — *मानवेन्द्र सिंह पुंडीर*

3. फारसी काव्य पर जहांगीर की अवधारणा : *मजालिस-ए-जहांगीरी* के विशेष संदर्भ में 37
   — *रियाज़ अहमद ख़ान*

4. धार्मिक प्रतिमान में बहस : मुगल भारत में उलेमा और राज्य 46
   — *शम्स तबरेज़*

5. मिर्जा राजा जयसिंह की पुरंदर और बीजापुर अभियान पर टिप्पणी 63
   — *जी.टी. कुलकर्णी*

6. अठारहवीं शताब्दी में पूर्वी उत्तर प्रदेश का सामाजिक परिदृश्य 72
   — *सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी*

7. बादशाह बेगम : अवध के शाही महल की राजनीतिक एवं धार्मिक गतिविधियां—एक ऐतिहासिक विश्लेषण 82
   — *मनीषा चौधरी*

8. अवध किसान आंदोलन में तालुकदारों की भूमिका : रायबरेली के विशेष संदर्भ में 102
   — *राधेश्याम वर्मा*

9. इतिहास के आईने में चौरीचोरा : एक सर्वेक्षण (1800-2000) 120
   — *राम प्रताप यादव*

10. उत्तराखंड क्षेत्र में स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका : एक अवलोकन 130
    — *अर्चना डिमरी*

11. मोहम्मद अली जिन्ना—एक राष्ट्रवादी के अलगाववादी बनने की परिस्थितियां 140
— सूर्य प्रकाश

12. कोविड-19 महामारी के दौरान लखनऊ के महिला मुरिकारी कारीगरों द्वारा सामना की जाने वाली बाधाएं एवं चुनौतियां 150
— रेशमा उमैर एवं सतेंद्र कुमार मिश्रा

पुस्तक समीक्षा

शीइज्म : आइडेंटिटी, स्कालर्स, एजुकेशन एंड कल्चर 160
— सैयद नजुमल रज़ा रिजवी
समीक्षक : शम्स तबरेज़

द हिस्ट्री ऑफ थार डिजर्ट : इन्वायरोमेंट, कल्चर एंड सोसायटी 163
— मनीषा चौधरी
समीक्षक : डॉ. रमा शंकर सिंह

मोहम्मद अली जिन्ना : एक राष्ट्रवादी के अलगाववादी बनने की परिस्थितियां

सूर्य प्रकाश

सन् 1947 में भारत का धार्मिक आधार पर दो भागों में विभाजन एक युगांतकारी घटना थी। इसके लिए मुख्य रूप से मोहम्मद अली जिन्ना को दोषी माना जाता है। उन पर आरोप है कि उन्होंने मुस्लिम हितों के स्थायी संरक्षण हेतु भारत भूमि से पाकिस्तान नामक देश का निर्माण कराया और यह तथ्य एक हद तक सही भी है लेकिन हम उनके अतीत पर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता है कि वे मूलतः उदारवादी थे, मॉर्ले के उदारवाद से प्रभावित थे, कांग्रेस के नरम दल के सदस्य थे, दादा भाई नौरोजी के सचिव, प्रशंसक व अनुयायी थे, आरंभिक मुस्लिम लीग के धुर विरोधी थे, सरोजिनी नायडू के अनुसार हिंदू-मुस्लिम एकता के दूत थे, वहीं गोपाल कृष्ण गोखले भी उनके सांप्रदायिक सौहार्द-भाव के मुक्तकंठ से प्रशंसक थे लेकिन यही मोहम्मद अली जिन्ना बाद में अपनी सांप्रदायिक नीति के कारण एक नए मुस्लिम देश की पहल का नेतृत्व करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी कुछ परिस्थितियां अवश्य रही होंगी जिसने हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक इस राष्ट्रवादी व्यक्ति को अलगाववाद की राह पर धकेल दिया। प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदू-मुस्लिम एकता व राष्ट्रीय आंदोलन में उनके योगदान के साथ-साथ उन परिस्थितियों व कारकों का विवेचन किया गया है जिसने मोहम्मद अली जिन्ना को अलगाववाद का कट्टर समर्थक बना दिया।

मोहम्मद अली जिन्ना उद्यमी, शांतचित्त, महत्वाकांक्षी, अंतर्मुखी तथा कम भावनात्मक लगाव वाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पिता जिन्नाभाई पूंझा के जहाजरानी व्यवसाय में सक्रिय योगदान देने हेतु अपने पिता के मित्र व डगलस ग्राहम एंड कंपनी के जनरल मैनेजर सर फैड्रिक क्राफ्ट से संपर्क किया तथा दो वर्ष के लिए सवैतनिक प्रशिक्षण हेतु लंदन चले गए लेकिन दादा भाई नौरोजी के प्रोत्साहन से वे लंदन में कानून के छात्र बने तथा उनमें राजनीति में अपना भविष्य बनाने की तीव्र इच्छा जाग्रत हुई।[1] जुलाई 1892 में ब्रिटेन में फिंसबरी संसदीय सीट से दादाभाई नौरोजी मात्र 3 वोटों से विजयी हुए। नौरोजी के ब्रिटिश संसद में प्रथम भाषण का जिन्ना पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा 1934 तक जिन्ना नरमवादी तथा नौरोजी के संवैधानिक उपागम से जुड़े रहे।[2] दादा भाई नौरोजी के अतिरिक्त जिन्ना ब्रिटेन में प्रखर

उदारवादी लॉर्ड मॉर्ले से भी प्रभावित हुए। लॉर्ड मॉर्ले जो *ऑन कंप्रोमाइज* पुस्तक के लेखक, जॉन स्टुअर्ट मिल के शिष्य, ग्लैडस्टोन के आयरिश होमरूल सचिव, उदारवादी व्यक्तित्व, जिन्ना के रोल मॉडल थे, जिन्ना उनकी पुस्तक को अपने छात्रों को पढ़ने को कहते थे।[3] जिन्ना के अनुसार उनका उदारवाद मेरे जीवन का अंग बन गया और उसने मुझे बहुत प्रभावित किया।[4] उनसे प्रभावित होकर जिन्ना स्वयं मानते थे कि व्यक्ति को जबरन परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। प्रेरण ही उसके व्यवहार-परिवर्तन की कुंजी है। इसके अतिरिक्त जिन्ना पर लॉर्ड क्रॉस, ग्लैडस्टोन के उदारवाद का भी प्रभाव रहा। जिन्ना लॉर्ड क्रॉस के भारत परिषद अधिनियम 1892 में भारत के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था लागू किए जाने से बहुत प्रभावित हुए तो वहीं ग्लैडस्टोन ब्रिटेन में उदारवाद के मजबूत स्तंभों में से एक थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि मोहम्मद अली जिन्ना इंग्लैंड में रहते हुए उदारवादी विचारों से प्रभावित हुए और उन्हीं विचारों के वाहक के रूप में 1896 में भारत आए। भारत आकर जिन्ना का सदैव प्रयास रहता था कि वह व्यक्तिगत प्रयासों व कांग्रेसी मंच के प्रयोग से स्वयं केंद्रीय भूमिका में बने रहें। इसके लिए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता तथा राष्ट्रीय आंदोलन में हर संभव सहयोग करने का प्रयास किया।

1896 में जब वे भारत आए तो कुछ समय के लिए प्रसिद्ध वकील सर जॉर्ज लाउडेज के चेंबर में कार्यरत रहे, साथ ही, उन्होंने कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन में व्यापक महत्व को समझते हुए नरम और गरम दल में एकता स्थापित कराने हेतु प्रयास भी किए। एक बार लाउडेज ने जिन्ना से विख्यात राष्ट्रवादी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के किसी भाषण के बारे में जानकारी मांगी थी तब जिन्ना ने कहा, "मैंने इस फाइल को नहीं छुआ है और मैं देखूंगा भी नहीं क्योंकि मैं तिलक जैसे महान देशभक्त पर मुकदमा चलाने के बारे में सरकार की आलोचना के लिए खुद को स्वतंत्र रखना चाहता हूं।'[5] तिलक जिन्ना को कांग्रेस की नरम दल शाखा का सदस्य मानते थे इसलिए 1904 में कांग्रेस ने स्वशासन के मुद्दे पर एक शिष्टमंडल जब ब्रिटेन भेजा गया, उसमें गोपाल कृष्ण गोखले तथा मोहम्मद अली जिन्ना थे। इसमें तिलक ने जिन्ना का विरोध किया लेकिन जिन्ना ने 1908 में तिलक की गिरफ्तारी के बाद जमानत हेतु भारतीय न्यायाधीश डी.डी. डावर के समक्ष याचिका दायर की यद्यपि जिन्ना को तिलक का वकील बनने की अनुमति नहीं मिली लेकिन कांग्रेस के गरम दल शाखा से निकटता बढ़ाने हेतु जिन्ना का यह प्रयास सराहनीय रहा। डावर को ब्रिटिश सरकार से 'नाइट' की उपाधि मिली। इस हेतु आयोजित रात्रि भोज की जिन्ना ने तीखी आलोचना की तथा उसमें उपस्थित होने से साफ मना कर दिया।[6] इसके बाद जिन्ना ने 1914 में मांडले जेल (बर्मा) से मुक्त हुए तिलक तथा उदारवादी नेता गोपाल कृष्ण गोखले के बीच संबंध सुधार के प्रयास भी किए ताकि कांग्रेस के नरम और गरम दल के मध्य एकता स्थापित हो सके लेकिन 1915 में गोखले की मृत्यु हो गई तथापि जिन्ना के प्रयास निरंतर जारी रहे। 1920 में तिलक को श्रद्धांजलि देते हुए जिन्ना ने कहा, 'चतुर व्यवहारिक राजनीतिज्ञ थे राजद्रोह के मामले में उन्हें मिली सजा निहायती बेढंगी थी।[7]

कांग्रेस के नरम दल और गरम दल के बीच मेल मिलाप कराने के अतिरिक्त जिन्ना ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए भी विशेष प्रयास किए जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती प्रदान हो सके। अंग्रेजों ने 'बांटो और राज करो' की नियत से भारत में मुस्लिम लीग नामक मुस्लिम राजनीतिक संगठन के गठन को प्रोत्साहन दिया। इसका राजनीतिक उद्देश्य अलीगढ़ में नवाब वकार उल मुल्क द्वारा दिए गए भाषण से स्पष्ट हो जाता है। इसमें उन्होंने कहा, 'अल्लाह ना करे कि अंग्रेजी राज्य भारत से समाप्त हो जाए,

तो हिंदू हम पर राज्य करेंगे और हमारी जान, माल और धर्म खतरे में होगा।'[8] ब्रिटेन के शासक एडवर्ड सप्तम के स्वागत हेतु कांग्रेस की ओर से बनी स्वागत समिति की फिरोजशाह मेहता की अध्यक्षता में एक बैठक 24 जुलाई, 1904 को हुई जिसमें जिन्ना ने मुस्लिमों के लिए राजनीतिक निकाय के प्रश्न पर अपनी असहमति दर्ज की। 7 अक्टूबर, 1906 को जिन्ना ने आगा खां के नेतृत्व वायसराय से मिलने गए प्रतिनिधि मंडल पर सवाल खड़े किए। उनका मानना था कि 'कांग्रेस मुस्लिमों का कम प्रतिनिधित्व नहीं करती और असल में देश में कांग्रेस ही एकमात्र राजनीतिक आवाज है।'[9] लेकिन छद्म राष्ट्रवादियों की हठधर्मिता के कारण 30 दिसंबर, 1906 को मुस्लिम लीग का गठन हुआ।

जिन्ना ने प्रारंभ में मुस्लिम लीग द्वारा पृथक निर्वाचक मंडल की मांग का विरोध किया। इन्होंने बंबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन की ओर से लॉर्ड मिंटो को प्रेषित मांग पत्र में मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल बनाए जाने का भी विरोध किया। पृथक निर्वाचन मंडल का समर्थन करने वाले आगा खां ने जिन्ना के विरोध में लिखा कि '1906 में हमारा सख्त विरोधी कौन था? बंबई के एक विलक्षण बैरिस्टर जिन्ना, जो हमेशा मित्रवत रहे लेकिन इस बिंदु पर जो कुछ मैंने और मेरे मित्रों ने किया है, उनका सीधे तौर पर कहना है कि पृथक निर्वाचन मंडल का सिद्धांत देश को अपने ही विरुद्ध विभाजित कर रहा है.....और वह लगभग 25 साल तक हमारे कठोर आलोचक व विरोधी बने रहे।'[10] 1913 में मुस्लिम लीग के कराची अधिवेशन में मौलवी रफीउद्दीन ने पृथक निर्वाचन का प्रस्ताव पेश किया। जिन्ना ने इसका विरोध करते हुए कहा, 'इस प्रश्न पर आवेश छोड़कर विचार करें। इसे वर्तमान लाभ के बदले भविष्य के स्थायी फायदे की नजर से देखें। विशेष प्रतिनिधित्व की मांग करके वे अंत में सिर्फ दो एकदम अलग-अलग खांचे ही हासिल करेंगे और कुछ नहीं।' मौलाना मोहम्मद अली व जिन्ना के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव अधिवेशन में स्वीकृत हुआ। जिन्ना 1912 से 1918 ई. तक अपने प्रयासों से हिंदू-मुस्लिम समन्वय के प्रतीक बन चुके थे। कांग्रेस में जहां उनके भूपेंद्र नाथ बसु, दिनशा वाचा, श्रीनिवास शास्त्री, तेज बहादुर सप्रू, मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि से अच्छे संबंध थे। वहीं दूसरी ओर, मुस्लिम लीग में राजा महमूदाबाद, अली इमाम, वजीर हसन (मुस्लिम लीग के सचिव) आदि भी जिन्ना के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। 11 मार्च 1913 को लोक सेवा आयोग समिति के लॉर्ड इसलिंगटन ने इनसे पूछा कि 'क्या एक साथ परीक्षा कराने की व्यवस्था में पिछड़े समुदाय को नुकसान के बारे में आप चिंतित नहीं हैं?' जिन्ना ने कहा 'मुझे इस बात पर कोई ऐतराज नहीं होगा कि एक खास समुदाय के ही लोग इसमें आ जाएं बशर्ते मुझे इस तरह सक्षम व काबिल लोग मिलें।' इसलिंगटन आगे कहते हैं कि 'क्या कोई हिंदू जिसने एक शिक्षित और प्रभावपूर्ण मुसलमान से थोड़े अधिक अंक हासिल किए हैं वह किसी मुस्लिम-बहुल जनसंख्या का प्रभारी बनने पर एक बेहतर व अधिक सक्षम प्रशासक साबित होगा, इस पर जिन्ना ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में आप उस हिंदू के साथ बहुत बड़ा अन्याय करेंगे। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि क्यों किसी हिंदू को एक मुस्लिम-बहुल जिले का प्रभारी नहीं बनना चाहिए।'[11] 1897 ये एक मुस्लिम प्रतिनिधि संस्था अंजुमन-ए-इस्लाम के सदस्य बने। इस संस्था के प्रमुख बदरुद्दीन तैयब जी थे जिन्होंने बाद में सर सैयद अहमद खान के दबाव के कारण कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेना बंद कर दिया। वहीं दूसरी ओर 'जिन्ना हिंदू-मुस्लिम एकता के विचार पर चलते हुए अंजुमन-ए-इस्लाम संस्था के साथ-साथ कांग्रेस के सहयोगी रहे।'[12] इन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता को दृष्टिगत रखते हुए 'गोखले योजना' का भी समर्थन किया

तथा सभी भारतीय राजनीतिक शक्तियों से एकजुटता का आह्वान किया। योजना के अनुसार प्रत्येक प्रांत की कैबिनेट में तीन भारतीय व तीन यूरोपीय सदस्य नियुक्त किए जाने थे। जिन्ना ने यहां मुस्लिम वर्ग की कोई बात नहीं की बल्कि इसके उलट परिषद को विधायिकाओं के प्रति उत्तरदायी बनाने तथा वायसराय व उसकी परिषद को प्रांतों पर नाम मात्र का नियंत्रण रखने संबंधी उपबंधों का समर्थन किया। जिन्ना ने मुस्लिम लीग में अपने अध्यक्षीय भाषण में 23 जनवरी, 1915 को कहा 'पूर्णतया सर्वसम्मत तरीके से भारत की माँगें ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखी जा सके, इसके लिए हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों के बीच सर्वसम्मति तथा सहयोग की भावना लाना सबसे बड़ी चुनौती है...निःसंदेह है वे न केवल एक बहुमूल्य आभूषण बल्कि एक वास्तविक कार्यकर्ता भी बनेंगे जिसकी बराबरी बहुत कम लोग कर सकेंगे।'

हिंदू-मुस्लिम एकता की दिशा में जिन्ना का सबसे बड़ा योगदान 1916 में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस का संयुक्त अधिवेशन लखनऊ में कराया जाना था जिसकी सफलता में तिलक और एनी बेसेंट का भी योगदान था। इसमें हुए समझौते को 'लखनऊ समझौता' कहा गया जिसमें कांग्रेस ने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की मांग को स्वीकृत किया। वहीं मुस्लिम लीग ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए किए जाने वाले राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेस के साथ प्रतिभाग करने पर प्रतिबद्धता जताई। इसी अधिवेशन में जिन्ना की पहल पर मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की एक संयुक्त समिति के गठन का निर्णय लिया गया इसके द्वारा निर्मित विधेयक को ब्रिटिश संसद में रखा जाना था तथा संयुक्त प्रतिनिधिमंडल की योजना भी बनाई गई लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिनिधिमंडल से मिलने को मना कर दिए जाने के कारण यह प्रस्ताव क्रियान्वित न हो सका लेकिन होम रूल लीग के आंदोलन के कारण भारत सचिव मोंटेग्यू को भारत भेजने का निर्णय लिया गया। 1916 के लखनऊ समझौते पर के.एम. मुंशी ने लिखा है कि 'एक अर्थ में उस समय जिन्ना कांग्रेस व मुस्लिम लीग दोनों पर हावी थे। उन्होंने भारत के लिए संविधान का प्रारूप तैयार करने और उसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के अधिवेशन में पारित करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और ऐतिहासिक लखनऊ समझौते के बिंदु संविधान के इस प्रारूप का महत्वपूर्ण हिस्सा बने। उसके तहत लीग के नेतृत्व में मुसलमानों ने आजादी हासिल करने के लिए हिंदुओं के साथ मिलकर काम करने का वचन दिया, साथ ही, कांग्रेस मुसलमानों को पृथक निर्वाचक मंडल और उनकी संख्यात्मक शक्ति से काफी अधिक वरीयता देने पर सहमत हुई।'[13] इन सब गतिविधियों के चलते 'बंबई के तत्कालीन गवर्नर विलिंगडन ने जिन्ना को मदन मोहन मालवीय, एनी बेसेंट, बाल गंगाधर तिलक के साथ उन लोगों की सूची में रखना प्रारंभ कर दिया जो ऐसे अतिवादी थे और जिन्हें संकट के दौर में गुजर रहे साम्राज्य के प्रति अपने कर्तव्य का तनिक भी बोध न था।[14] नवंबर 1917 में भारत आए मोंटेग्यू से तीन संयुक्त प्रतिनिधि मंडल मिले। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के संयुक्त प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की होमरूल लीग का नेतृत्व एनी बेसेंट तथा बंबई में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की होमरूल लीग का नेतृत्व मोहम्मद अली जिन्ना ने किया। मोंटेग्यू से इन प्रतिनिधि मंडलों की वार्ता के लिए जिन्ना ने विशेष प्रयास किए थे। बाद में मोंटेग्यू ने अपनी पुस्तक *एन इंडियन डायरी* में जिन्ना के प्रयासों की प्रशंसा की। जुलाई 1918 में मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार प्रकाशित होने पर जिन्ना ने इस पर आपत्ति प्रकट की तथा इनकी पहल पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के संयुक्त प्रतिनिधि मंडल का इंग्लैंड जाना तय हुआ लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के कारण इसे इंग्लैंड जाने की अनुमति नहीं मिली। जनवरी 1919 में साउथबोरो समिति व अगस्त 1919 में भारत

शासन विधेयक 1919 की समीक्षा हेतु बनी संयुक्त संसदीय समिति में जिन्ना ने कहा, 'जब कनाडा के लोगों को नगर पालिकाओं के लिए भी मताधिकार हासिल नहीं था। उन्हें नगर पालिकाओं का अनुभव तक नहीं था तब कनाडा में पूरी तरह उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी गई इसलिए मैं यही कहूंगा हमारे पास पर्याप्त निर्वाचक मंडल नहीं होने का तर्क बिल्कुल उचित नहीं है। यह तर्क निराधार है।'

आरंभ में जिन्ना ने धर्म को राजनीति से अलग मानते हुए ब्रिटिश सरकार द्वारा तुर्की के खलीफा के अधिकारों को कम करने के निर्णय पर भारत में आंदोलन का समर्थन नहीं किया, साथ ही, इसे अंग्रेजों का वैदेशिक मामला मानकर इसकी अनदेखी की लेकिन बाद में ये ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध व्यापक जनाक्रोश को देखते हुए ब्रिटेन जाने वाले खिलाफत प्रतिनिधि मंडल में शामिल हुए तथा ब्रिटिश सरकार से असहयोग की चेतावनी भी दी। सितंबर 1919 में उन्होंने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविड लॉयड जॉर्ज को खिलाफत के प्रश्न पर गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी भी दी।

जिन्ना ने 1919 में निर्मित रौलट एक्ट का विरोध किया। उन्होंने कहा, 'यह क्रांतिकारी अपराधों जैसी बीमारी की गलत दवा है। किसी भी सभ्य देश के वैधानिक इतिहास में ऐसे कानूनों को लागू करने के पूर्ववर्ती व समानांतर उदाहरण नहीं मिलते हैं। यदि ऐसे कानून पास हो गए तो वह अद्वितीय संघर्ष उत्पन्न करेंगे तथा इससे सरकार और जनता के बीच संबंधों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।[15] परिषद में 22 लोगों के एकमत विरोध के बावजूद कानून पारित हुआ। इस पर जिन्ना ने कहा 'सरकार ने निर्दयता से उन सिद्धांतों को कुचल दिया जिसके लिए ग्रेट ब्रिटेन ने खुलकर युद्ध लड़ा था तथा न्याय के आधारभूत सिद्धांत का उन्मूलन कर दिया गया है तथा जनता के संवैधानिक अधिकारों का हनन किया गया है, उस समय पर जब राज्य को कोई बात से खतरा ही नहीं है।'[16] फिर परिषद में अपने सुझावों की अनदेखी पर उन्होंने कहा कि 'मैं काउंसिल में अपने लोगों के किसी भी प्रयोग में नहीं आ सकता हूँ और ऐसी सरकार के साथ सहयोग असंभव है जिसमें जनप्रतिनिधियों की राय को सम्मान नहीं दिया जाता है।'[17] और ऐसा कहकर जिन्ना ने अपना इस्तीफा वायसराय को दे दिया। 7 सितंबर, 1920 को कोलकाता में मुस्लिम लीग के विशेष अधिवेशन में जिन्ना ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स में जनरल डायर के समर्थन में पारित प्रस्ताव की निंदा की तथा सदन के सदस्यों की तुलना 'इंग्लैंड के नीलवर्ण तथा मस्तिष्कहीन रक्त' से की तथा असहयोग करने की चेतावनी भी दी यद्यपि इसका स्वरूप महात्मा गांधी के असहयोग की अवधारणा से भिन्न बताया।

इस प्रकार जिन्ना के व्यापक प्रयासों से कांग्रेस व मुस्लिम लीग के मध्य एकता लगभग 1924 तक बनी रही। 1924 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने प्रांतीय स्वायत्तता पर बल देते हुए मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की एकता के पक्ष में विचार रखा इसके अतिरिक्त जिन्ना ने कांग्रेसी प्रयासों के समर्थन में गोखले के प्रारंभिक शिक्षा विधेयक 1912, प्रारंभिक शिक्षा विधेयक 1917, विशेष विवाह अधिनियम आदि का समर्थन किया तथा कांग्रेस की मांग के अनुसार 1917 में ही भारत और इंग्लैंड में सिविल सेवा की परीक्षा एक साथ कराने की मांग भी की।

जिन्ना अधिक समय तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की केंद्रीय भूमिका में न रह सके। कुछ सांप्रदायिक व राजनीतिक कारकों के चलते वे अलगाववाद की ओर अग्रसर हुए। सर्वप्रथम, वे विधान परिषद के सदस्य होने के कारण अंग्रेजों का विरोध कभी खुलकर नहीं कर सके न ही सड़कों पर आकर आंदोलन ही कर सके। उनके द्वारा केवल संवैधानिक रूप से अंग्रेजी सरकार का विरोध किए जाने के

कारण वे रौलेट सत्याग्रह तथा जलियांवाला बाग हत्याकांड मामलों पर उत्पन्न जनाक्रोश पर जनता की आशाओं पर खरे नहीं उतर सके। वहीं, परिषद के सक्रिय सदस्य होने का भी वे अपनी जनता को लाभ न दे सके। इसके बाद प्रथम विश्व युद्ध ने भी जिन्ना की राष्ट्रीय साख पर बट्टा लगाया। इस युद्ध के कारण जिन्ना 'गोखले योजना' पर तथा मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों पर बने प्रतिनिधि मंडलों के माध्यम से इंग्लैंड ना जा सके। युद्ध के कुछ महीनों पहले ही जिन्ना की मांगें ठुकराई गई थीं। वही मांगें मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के रूप में बाद में अंग्रेज सरकार द्वारा मान ली गई लेकिन इन घटनाओं के कारण राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित करने का मंच जिन्ना से छिन गया।

खिलाफत आंदोलन के प्रश्न पर जिन्ना राजनीति और धर्म के गठजोड़ के विरुद्ध थे। जिन्ना जो इस्लाम के सिद्धांतों के दृढ़ पक्षधर नहीं थे और न ही काबा के आध्यात्मिक महत्व के प्रति संवेदनशील थे, संवैधानिक रवैया अपनाया और अंग्रेजों के विरुद्ध जन विद्रोह में शामिल होने से मना कर दिया।'[18] दिल्ली में हुए मुस्लिम लीग के 11 वें अधिवेशन में जब तुर्की के सुल्तान के पक्ष में प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया तो जिन्ना ने यह कहते हुए विरोध किया कि 'मुस्लिम लीग को ब्रिटिश सरकार की विदेश नीति में बाधक नहीं बनना चाहिए, लेकिन जिन्ना को जन दबाव के चलते अपने विचार वापस लेने पड़े और प्रस्ताव का समर्थन करना पड़ा।'[19] और अंततः खिलाफत आंदोलन में मुस्लिम लीग की भूमिका को बढ़ाने में योगदान दिया और उन्होंने लंदन जाने वाले प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया एवं ब्रिटिश सरकार के समक्ष एक अनुरोध पत्र जिसमें भारतीय मुसलमानों के लिए खलीफा के महत्व पर बल देते हुए तथा तुर्की के प्रति उदारता की प्रार्थना करते हुए रखा[20] लेकिन उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा खिलाफत के मुद्दे पर असहयोग आंदोलन किए जाने का विरोध किया जिसके अंतर्गत 1 वर्ष में स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित था। ऐसे समय में संवैधानिक पद्धति के माध्यम से खिलाफत के प्रश्न को हल करने के कारण उनकी मुस्लिम समाज में छवि कमजोर हुई और फिर वह इसी छवि को साफ करने में जुट गए।

1909 व 1919 के परिषदीय सुधारों ने भी प्रांतीय व स्थानीय स्वशासन के स्तर पर सांप्रदायिकता के पक्ष में ऐसा माहौल बना दिया था कि जिन्ना द्वारा उसमें बिना हस्तक्षेप किए राष्ट्रीय स्तर पर उनकी छवि को संतुलित रख पाना मुश्किल था। इन सुधारों के माध्यम से अंग्रेजों ने केंद्रीय विधान परिषद में सीटों की संख्या बढ़ाते हुए भारतीयों के लिए निर्वाचित होने के प्रावधान किए जिसके अंतर्गत परिषद में स्थानीय निकायों जैसे जिला बोर्ड, नगरपालिका, आदि का प्रभाव बढ़ने लगा। अतः परिषदों में मुसलमानों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए जिन्ना को राष्ट्रस्तरीय राजनीति के स्थान पर प्रांतीय व स्थानीय स्तरीय मांगों पर अधिक ध्यान देना पड़ा जो कि उनके अखिल भारतीय नेता के रूप में स्वीकृति की दिशा में एक बड़ा अवरोध सिद्ध हुआ। 1915 व 1916 में संयुक्त प्रांत नगर पालिका विधेयक में नगर पालिकाओं को बड़े अधिकार सौंपे जाने थे इसलिए जिन्ना को अब प्रांतीय हितों की चिंता होने लगी और 1913 में पृथक निर्वाचक मंडल का विरोध आरंभ करने वाले जिन्ना 1916 तक पृथक निर्वाचक मंडल के पक्षधर बन गए। 1919 में प्राप्त प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत पंजाब राज्य की स्थिति मुस्लिम हित के दृष्टिकोण से अच्छी थी इसलिए 1924 में मुस्लिम लीग के लाहौर में हुए 15 वें अधिवेशन में जिन्ना ने अपने कार्यक्रमों में पंजाबी मुसलमानों का समर्थन पाने हेतु उनके सांप्रदायिक मुद्दों को स्वीकृत किया तथा प्रांतीय स्वायत्तता का समर्थन किया ।

महात्मा गांधी के भारत आगमन के बाद उनके द्वारा होमरूल लीग आंदोलन के उद्देश्य तथा पद्धति

में बदलाव किए जाने से जिन्ना को राष्ट्रीय मंच छिन जाने से एक आघात पहुंचा। के.एम. मुंशी के अनुसार, 'महात्मा गांधी ने होम रूल लीग का उद्देश्य 'ब्रिटिश साम्राज्य के तहत स्वशासन' के स्थान पर 'पूर्ण स्वराज्य' कर दिया तथा लीग के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु 'संवैधानिक तरीकों से' के स्थान पर 'शांतिपूर्ण और विधिसम्मत तरीकों' से कर दिया। जिन्ना ने यह कहते हुए इसका विरोध किया कि बिना तीन-चौथाई बहुमत व पूर्व सूचना के होम रूल लीग के संविधान में संशोधन नहीं किया जा सकता लेकिन महात्मा गांधी ने आपत्ति निरस्त कर दी। इस कारण जिन्ना सहित 19 सदस्यों ने होमरूल लीग से त्यागपत्र दे दिया। इस अवसर पर जिन्ना ने कहा था कि 'गांधी मुस्लिम धार्मिक नेताओं व उनके अनुयायियों की धर्मांधता को प्रोत्साहित न करें।'[21] महात्मा गांधी ने जिन्ना से नई पद्धति का अंग बनने का सुझाव दिया। इस पर जिन्ना ने कहा 'नए जीवन से आप का मतलब आपकी पद्धति व कार्यक्रम से है। मुझे डर है कि मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता और मुझे पूरा विश्वास है कि यह खतरे की ओर ले जाएंगे।'[22]

मोहम्मद अली जिन्ना के अलगाववाद के मार्ग पर चलने का सबसे अहम कारक महात्मा गांधी का भारत आगमन था। इस कारण भारतीय राजनीतिक पटल पर जिन्ना की केंद्रीय भूमिका में बने रहने की इच्छा पर तीव्र आघात हुआ। दोनों में पर्याप्त चारित्रिक अंतर भी विद्यमान थे। जिन्ना मितभाषी, शांत स्वभावी, अंतर्मुखी तथा संवैधानिक तरीकों से सुधारों हिमायती थे। वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी अपने दक्षिण अफ्रीकी अनुभव तथा कुछ वर्षों के भारतीय अनुभव के कारण रचनात्मक कार्यकर्ता, बहिर्मुखी व जन आंदोलन के प्रबल पक्षधर थे। संवैधानिक सुधारों तथा रौलेट एक्ट व जलियांवाला बाग कांड के बाद भारत में गांधीवादी पद्धति से आंदोलनों की महत्ता में पर्याप्त वृद्धि हुई थी।

जहां एक ओर जिन्ना खिलाफत के प्रश्न पर तुर्की के सुल्तान के अधिकारों के प्रति निश्चिंत रहे तथा उसे भारत सरकार का विदेशी मामला बताकर अनदेखा करने लगे। वहीं महात्मा गांधी ने इस मामले को हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए उपयुक्त अवसर मानकर आंदोलन करने के लिए नेतृत्व किया। इस कारण मई 1920 में अखिल भारतीय खिलाफत समिति ने उन्हें अध्यक्ष बनाते हुए असहयोग आंदोलन करने के लिए अधिकृत किया। सितंबर 1920 में कांग्रेस के कोलकाता में हुए विशेष अधिवेशन में महात्मा गांधी के असहयोग के प्रस्ताव के समर्थक केवल मोतीलाल नेहरू थे जबकि लाला लाजपत राय, चितरंजन दास, बिपिन चंद्र पाल, एनी बेसेंट, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना आदि ने इस प्रस्ताव का विरोध किया जबकि महात्मा गांधी अपने प्रस्ताव पर अटल रहे। यह प्रस्ताव 884 के मुकाबले 1986 वोटों से पारित हुआ और यहीं से ही गांधी युग की शुरुआत मानी जाती है और जिन्ना स्वयं को हाशिये पर महसूस करने लगते हैं। 'महात्मा गांधी द्वारा 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में वैधानिक व शांतिपूर्ण साधनों से स्वशासन प्राप्ति को कांग्रेस का उद्देश्य बताया।'[23] गांधी ने यह भी कहा कि यदि अंग्रेज जनता की मांगों को नहीं मानते हैं तो उनसे संबंध तोड़ दिए जाएं तथा एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य रखा। जिन्ना ने इस बात का विरोध किया कि स्वराज के मुद्दे में स्पष्टता नहीं है। स्वराज प्राप्ति के लिए असहयोग की धारणा राजनीतिक रूप से कमजोर व अतार्किक है, यह कहकर 1920 में जिन्ना ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। इसी समय पर एम.ए. अंसारी की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने नागपुर में असहयोग का प्रस्ताव पारित किया। ऐसे में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस किसी को भी अपने साथ न देखकर जिन्ना ने नागपुर छोड़ दिया। 1921 में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में महात्मा

गांधी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा गया। जब सभी सदस्य कुर्सी-मेज के स्थान पर जमीन पर बैठे, उन्होंने खद्दर के कपड़े पहने, खद्दर के तंबू में ठहरे तथा सभी ने चरखे से सूत काता। वही जिन्ना कॉलर, टाई पहन कर अधिवेशन में आए और सूत भी नहीं काता। महात्मा गांधी के प्रभाव के चलते यह जिन्ना का किसी कांग्रेसी अधिवेशन में अंतिम प्रतिभाग था। स्पष्ट है कि 'महात्मा गांधी के भारत लौटने पर उनके तेजी से बढ़ते प्रभाव की वजह से 1920 के समीप आते-आते राष्ट्रीय स्तर पर जिन्ना के लिए अपनी स्थिति को बरकरार रखना मुश्किल हो गया।'[24]

असहयोग आंदोलन में प्रतिभाग न करने के कारण मोहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस के साथ-साथ भारतीय राजनीतिक पटल पर एक मुस्लिम चिंतक के रूप में ओझल होने लगे क्योंकि उनके स्थान पर मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली, एम.ए. अंसारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद ने तुलनात्मक रूप से अधिक ख्याति अर्जित कर ली। इसी कारण जिन्ना मुस्लिम समर्थन पाने हेतु सांप्रदायिकता के चक्रव्यूह में फंस गए। इसके अतिरिक्त मुस्लिम लीग तथा अंग्रेजों का मानना था कि असहयोग आंदोलन के कारण केरल में हिंदू जमींदार तथा मुस्लिम कृषक (मोपला) के मध्य विद्रोह हुआ जिसकी लहर उत्तर भारत तक आ पहुंची। 1922 में पंजाब में हिंदुओं पर मुस्लिमों द्वारा अत्याचार किए गए। वहीं सितंबर 1922 में मुल्तान में मोहर्रम के दौरान सांप्रदायिक दंगे हुए जिसमें हिंदुओं पर अत्याचार किया गया। उस समय गुरु का बाग में अकाली सिख उपद्रव की जांच करने पहुंचे मदन मोहन मालवीय ने अमृतसर, लाहौर में सभाएं कीं तथा मुसलमानों से अपना प्रतिरोध न कर पाने के कारण हिंदुओं की आलोचना की तथा उन्होंने हिंदुओं को जाग्रत होने का आह्वान भी किया। बाद के 6 वर्षों में 'मालाबार व मुल्तान' हिंदुत्व उत्थान का नारा बन गया। सितंबर 1924 में जीवनदास द्वारा *रंगीला रसूल* पुस्तक में पैगंबर मोहम्मद साहब का गलत चित्रण किए जाने के कारण *कोहाट* में दंगे हुए जिस कारण आर्य समाज के प्रभाव वाले शहरी हिंदुओं को अपना क्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। उन्होंने दिसंबर 1924 में महात्मा गांधी की लाहौर यात्रा में दिलचस्पी न लेते हुए राजनीतिक रूप से सशक्त होने का विचार धारण किया। एम.आर. जयकर के करीबी केशव बलिराम हेडगेवार ने 1925 में हिंदुओं के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण किया। मदन मोहन मालवीय, एम.आर. जयकर, लाला लाजपत राय के नेतृत्व में हिंदू राष्ट्रवाद का पुनरुत्थान हुआ। यह वर्ग मुस्लिम लीग को विभाजनवादी मानसिकता से ग्रस्त मानता था। बिहार के गया में हिंदू महासभा के वार्षिक सम्मेलन में मदन मोहन मालवीय ने भारत के प्रत्येक गांव में हिंदू महासभा के गठन का प्रस्ताव रखा। हिंदू महासभा के 'महावीर दल' के प्रत्युत्तर में मुस्लिम लीग ने 'अली गोल' दल बनाया। मुसलमानों की तुलना में हिंदुओं ने अधिक कट्टरता व संगठन के साथ प्रयास किए। इसने भी जिन्ना को सांप्रदायिक मार्ग पर चलने के लिए विवश किया। लाला लाजपत राय ने मोहम्मद अली जिन्ना को 'सांप्रदायिकतावादी मुस्लिम पार्टी का रंगरूट' कहा। दंगों के अतिरिक्त हिंदू और मुस्लिम त्योहारों ने भी इनके बीच संघर्ष को प्रेरित किया। अंग्रेज हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को 'गाय और गानों' का मसला कहकर उपहास करते थे। इस कारण न्यायालय में इन मामलों से संबंधित वादों में वृद्धि हुई। वही अंग्रेजों की कानून पद्धति ने भी इस संघर्ष को बढ़ाने में योगदान दिया।

1923 के चुनावों के दौर में मोहम्मद अली जिन्ना को स्वराज दल से गठबंधन के बाद भी निराशा हाथ लगी। उन्होंने 1923 के चुनावों के लिए इंडिपेंडेंट पार्टी बनाई जिसने स्वराज पार्टी के साथ गठबंधन किया और इस गठबंधन को 'नेशनलिस्ट पार्टी' नाम दिया गया लेकिन 1924 के अंत में इस गठबंधन

में दरार आने लगी। इंडिपेंडेंट पार्टी ने स्वराज पार्टी के निरंतर प्रतिरोध के स्थान पर 'संसदीय या संवैधानिक प्रतिरोध' का मार्ग चुना।

इसके बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग के विचारों में वर्ष दर वर्ष दूरियां बढ़ने लगीं। 1928 में बनी नेहरू रिपोर्ट के प्रत्युत्तर में जिन्ना ने अपने 14 सूत्र रखें जिसमें उन्होंने मुस्लिम हित को साधने हेतु 14 मांगों का उल्लेख किया। कांग्रेस द्वारा इन मांगों को न माने जाने के कारण जिन्ना की विचारधारा सांप्रदायिकता का रंग लेने लगी। 1937 के प्रांतीय चुनाव मोहम्मद अली जिन्ना के कट्टर सांप्रदायिक रुख अपनाने के संदर्भ में ताबूत में अंतिम कील साबित हुए। मुस्लिम लीग का संयुक्त प्रांत में विशेष प्रभाव था। इसके सांप्रदायिकता के पक्ष में व्यवहार परिवर्तन में संयुक्त प्रांत की विशेष भूमिका रही। खलीकुज्जमा के शब्दों में, 'भारतीय राजनीति के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि संयुक्त प्रांत से ही लीग का पुनर्गठन आरंभ हुआ था।'[25] 1937 के चुनावों के दौरान कांग्रेस तथा लीग के संबंध पर्याप्त मैत्रीपूर्ण रहे थे क्योंकि 'दोनों ही छतारी के नवाब की नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी के विरुद्ध लड़ रहे थे ..... लेकिन चुनावों में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो जाने पर कांग्रेस ने संयुक्त प्रांत में मिली-जुली सरकार बनाने के बारे में खलीकुज्जमा के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।'[26] मुस्लिम लीग को आशा थी कि यूपी और बिहार में उनके सदस्य कांग्रेसी मंत्रिमंडल में सम्मिलित कर लिये जाएंगे। 'कांग्रेस जो असांप्रदायिकता के लिए गर्व करती थी, ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और यह कहा कि यदि मुस्लिम लीग के सदस्य मंत्री बनना चाहते हैं तो वे कांग्रेसी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करें। यह संभवत कांग्रेस की सबसे बड़ी भूल थी।'[27] इस प्रतिज्ञा-पत्र के अंतर्गत मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा गोविंद बल्लभ पंत ने खलीकुज्जमा से मुस्लिम लीग के संयुक्त प्रांत के विधायकों के कांग्रेसी बनने का प्रस्ताव रखा था। इस कार्य की ब्रिटिश इतिहासकार आर. कूपलैंड ने इस प्रकार आलोचना की कि 'कांग्रेस हाईकमान के सर्वाधिकारवाद ने संघीय सिद्धांतों को पूर्णरूपेण खोखला कर दिया था और कांग्रेसी मंत्रिमंडलों द्वारा उठाए जाने वाले अपने हिंदू समर्थक कदमों में निश्चित रूप से मुसलमानों से अलगाव उत्पन्न किया था।'[28]

अतः उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोहम्मद अली जिन्ना का एकमात्र ध्येय भारतीय राजनीतिक पटल पर केंद्रीय भूमिका में बने रहना था जिस कारण वे 1918 तक हिंदू मुस्लिम एकता के दूत बनकर संवैधानिक तरीके से स्वशासन प्राप्ति हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ रहे और इस दिशा में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली लेकिन भारत के राजनीतिक फलक पर महात्मा गांधी के आगमन, प्रांतीय व स्थानीय स्तर पर चुनावी मुद्दों के उभरने के कारण उत्पन्न संप्रदायवाद, ब्रिटिश अत्याचारी नीति के प्रत्युत्तर में जनता द्वारा संवैधानिक सुधार पद्धति से तिलांजलि आदि कारकों से उनकी राष्ट्रीय स्तर पर भूमिका क्षीण होती चली गई। अतः 1918 के बाद वे क्रमशः मुस्लिम हितों के संदर्भ में केंद्रीय भूमिका निभाने के उद्देश्य से संप्रदायवाद के गर्त में समाहित होते चले गए और इसका परिणाम भारत विभाजन के रूप में दृष्टिगोचर हुआ।

संदर्भ

1. स्टैनले वॉलपर्ट, *जिन्ना ऑफ पाकिस्तान,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1984, पृ. 10-12.
2. इयान ब्रंट वैल्स, *एंबेसडर ऑफ हिंदू-मुस्लिम यूनिटी,* सीगल पब्लिशर्स, लंदन, 2006, पृ. 15.
3. जे. अहमद, *स्पीच एंड राइटिंग्स ऑफ मिस्टर जिन्ना,* लाहौर, पाकिस्तान, भाग-1 ,पृ. 104
4. हेक्टर बोलिथो, *जिन्ना द क्रिएटर ऑफ पाकिस्तान,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पाकिस्तान शाखा, 2006, पृ. 9 .
5. एम.सी. चागला, *रोजेस इन दिसंबर,* भारतीय विद्या भवन, 2012, पृ. 14
6. ए. एच. रानी, *कायदे आजम,* इस्लामाबाद, पृ. 83
7. एस.एस. पीरजादा, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना,* भाग 1, ईस्ट एंड वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी, कराची, 1984
8. बी.एल. ग्रोवर, यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास-एक नवीन मूल्यांकन,* एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 422
9. एस.एस. पीरजादा, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना,* भाग 1, ईस्ट एंड वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी, कराची, 1984, पृ. 1
10. *द मेमायर्स ऑफ आगा खां,* आगा खां, साइमन एंड सस्टर पब्लिकेशन, न्यूयॉर्क, 1954
11. *मिनट्स ऑफ एविडेंस,* इंडिया रिकॉर्ड ऑफिस, अंक 22
12. *बॉम्बे गजट,* 30 जुलाई 1904
13. के.एम. मुंशी, *पिलग्रिमेज टू फ्रीडम,* भारतीय विद्या भवन, बंबई, पृ. 7
14. मोंटेग्यू पेपर, *एमएसएस ईयूआर डी* 523/18, पृ. 50-51.
15. मोहम्मद यूसुफ खान, *द ग्लोरी ऑफ कायदे आजम,* कारवां बुक सेंटर, मुल्तान, पाकिस्तान ,पृ. 30-31
16. एम.एच. सैयद, *मोहम्मद अली जिन्ना,* एलिट पब्लिशर्स, कराची, पाकिस्तान, 1970 प्रश्न संख्या 238-239
17. वही
18. रफीक जकारिया, *द मैन हू डिवाइडेड इंडिया,* पॉपुलर प्रकाशन, बंबई ,पृ. 22
19. चौधरी खलीकुज्जमा, *पाथवे टू पाकिस्तान,* लोंगमैन्स, लाहौर ब्रांच, पाकिस्तान, पृ. 43
20. एस.एस. पीरजादा, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना,* भाग 1, ईस्ट एंड वेस्ट पब्लिशिंग कंपनी, कराची, 1984, पृ. 360-62
21. के.एम. मुंशी, *पिलग्रिमेज टू फ्रीडम,* भारतीय विद्या भवन, बंबई, पृ. 222
22. *बॉम्बे क्रॉनिकल,*(दैनिक) 1 नवंबर 1920
23. *भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 35 वें अधिवेशन की रिपोर्ट,*1920,च46
24. जसवंत सिंह, *जिन्ना—भारत विभाजन के आईने में,* राजपाल एंड संस पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ. 85
25. चौधरी खलीकुज्जमा, *पाथवे टू पाकिस्तान, लोंगमैन्स,* लाहौर ब्रांच, पाकिस्तान, पृ. 173.
26. सुमित सरकार, *आधुनिक भारत* (1885 से 1947 ई.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 373
27. बी.एल. ग्रोवर, यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास* ,एस चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 423
28. आर. कूपलैंड, *द कॉन्स्टिट्यूशनल प्रॉब्लम्स इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन ,भाग 2 पृ. 99